अँधेर कब दिनकर तले?
दिया तले वह होत।
दुखी अधूरे हम सभी,
प्रभु - पूरे सुख स्रोत।।१७।।

यथा दुग्ध में घृत तथा,
रहता तिल में तैल।
तन में शिव है ज्ञात हो,
अनादि का यह मेल।।१८।।

हुआ प्रकाशित मैं छुपा,
प्रभु हैं प्रकाश पुंज।
हुआ सुवासित, महकते
तुम पद विकास कुंज।।१९।।

निरे निरे जग - धर्म है,
निरे - निरे जग कर्म।
भले बुरे कुछ ना अरे !
हरे, भरे हो नर्म।।२०।।

विषयों से क्यों खेलता,
देता मन का साथ।
बाँमी में क्या डालता?
भूल कभी निज - हाथ।।२१।।

खेत, क्षेत्र में भेद इक,
फलता पुण्यापुण्य।
क्षेत्र करे सबका भला,
फलता सुख अक्षुण्ण।।२२।।

ऐसा आता भाव हैं,
मन में बारम्बार।
पर दुख को यदि ना मिटा–
सकता जीवन भार।।२३।।

पल भर पर दुख देख भी–
सकते ना जिनदेव।
तभी दृष्टि आसीन है,
नासा पर स्वयमेव।।२४।।

सूखे परिसर देखते,
भोजन करते आप।
फिर भी खुद को समझते,
दयामूर्ति - निष्पाप।।२५।।

हाथ देख मत देख लो,
मिला बाहुबल पूर्ण।
सदुपयोग बल का करो,
सुख पाओ संपूर्ण।।२६।।

उगते अंकुर का दिखा,
मुख सूरज की ओर।
आत्मबोध हो तुरत ही,
मुख संयम की ओर।।२७।।

दया रहित क्या धर्म है?
दया रहित क्या सत्य?
दया रहित जीवन नहीं,
जल बिन मीन असत्य।।२८।।

पानी भरते देव हैं,
वैभव होता दास।
मृग मृगेन्द्र मिल बैठते,
देख दया का वास।।२९।।

कूप बनो तालाब ना,
नहीं कूप - मंडूक।
बरसाती मेंढक नहीं,
बरसो घन बन मूक।।३०।।

अग्रभाग पर लोक के,
जा रहते नित सिद्ध।
जल में ना, जल पर रहे,
घृत तो ज्ञात प्रसिद्ध।।३१।।

साधु गृही सम ना रहे,
स्वाश्रित - भाव समृद्ध।
बालक - सम ना नाचते,
मोदक खाते वृद्ध।।३२।।

तत्व दृष्टि तज बुध नहीं,
जाते जड़ की ओर।
सौरभ तज मल पर दिखा,
भ्रमर भ्रमित कब और ?।।३३।।

दया धर्म के कथन से,
पूज्य बने ये छन्द।
पापी तजते पाप हैं,
दृग पा जाते अन्ध।।३४।।

सिद्ध बने बिन शुद्ध का,
कभी न अनुभव होय।
दुग्ध पान से स्वाद क्या,
घृत का सम्भव होय?।।३५।।

स्वर्ण बने वह कोयला,
और कोयला स्वर्ण।
पाप पुण्य का खेल है,
आतम में ना वर्ण।।३६।।

सब में वह ना योग्यता,
मिले न सब को मोक्ष।
बीज सीझते सब कहाँ,
जैसे टर्रा मोट।।३७।।

सब गुण मिलना चाहते,
अन्धकार का नाश।
मुक्ति स्वयं आ उतरती,
देख, दया का वास।।३८।।

व्यर्थ नहीं वह साधना,
जिस में नहीं अनर्थ।
भले मोक्ष हो देर से,
दूर रहे अघ - गर्त।।३९।।

जिलेबियाँ ज्यों चासनी,
में सनती आमूल।
दयाधर्म में तुम सनों,
नहीं पाप में भूल।।४०।।

संग्रह पर का तब बने,
जब हो मूर्च्छा-भाव।
प्रभाव शनि का क्यों पड़े?
मुनि में मोहाभाव।।४१।।

किस किस का कर्त्ता बनूँ,
किस किस का मैं कार्य।
किस किस का कारण बनूँ,
यह सब क्यों कर आर्य?।।४२।।

पर का कर्त्ता मैं नहीं,
मैं क्यों पर का कार्य।
कर्त्ता कारण कार्य हूँ,
मैं निज का अनिवार्य।।४३।।

लघु-कंकर भी डूबता,
तिरे काष्ठ भी स्थूल।
"क्यों" मत पूछो, तर्क से
स्वभाव रहता दूर।।४४।।

फूल फलों से ज्यों लदे,
घनी छाँव के वृक्ष।
शरणागत को शरण दे,
श्रमणों के अध्यक्ष।।४५।।

थकता, रुकता कब कहाँ,
ध्रुव में नदी प्रवाह।
आह वाह परवाह बिन,
चले सूरि-शिव राह।।४३।।

बूँद बूँद के मिलन से,
जल में गति आ जाय।
सरिता बन सागर मिले,
सागर बूँद समाय।।४७।।

कंचन - पावन आज पर,
कल खानों में वास।
सुनो अपावन चिर रहा,
हम सब का इतिहास।।४८।।

किस किस को रवि देखता,
पूँछे जग के लोग।
जब जब देखूँ देखता,
रवि तो मेरी ओर।।४६।।

सत्कार्यो का कार्य हैं,
शांति मिले सत्कार।
दुष्कार्यो का कार्य है,
दुस्सह दुख दुत्कार।।५०।।

बनो तपस्वी तप करो,
करो न ढीला शील।
भू-नभ-मण्डल जब तपे,
बरसे मेघा नीर।।५१।।

घुट धुट कर क्यों जी रहा,
लुट लुट कर क्यों दीन।
अन्तर्घट में हो जरा,
सिमट सिमट कर लीन।।५२।।

बाहर श्रीफल कठिन ज्यों,
भीतर से नवनीत।
जिन - शासक आचार्य को,
विनमूँ नमूँ विनीत।।५३।।

सन्त पुरुष से राग भी,
शीघ्र मिटाता पाप।
उष्ण नीर भी आग को,
क्या न बुझाता आप ?।।५४।।

ओर छोर शुरुआत ना,
घनी अँधेरी रात।
विषयों की बरसात हैं,
युगों युगों की बात।।५५।।

गात्र प्राप्त था गात्र है,
आत्म-गात्र ना प्राप्त।
आत्मबोध क्यों ज्ञात हो,
युगों युगों की बात ।।५६।।

क्या था क्या हूँ क्या बनूँ?
रे मन ! अब तो सोच।
वरना मरना वरण कर,
बार बार अफसोस ।।५७।।

माना मनमाना करे,
मन का धर्म गरूर।
मान-तुंग के स्मरण से,
मानतुंग हो चूर।।५८।।

संग रहित बस ! अंग है,
यथाजात शिशु ढंग।
श्रमंण जिन्हें मम नमन हो,
मानस में न तरंग।।५९।।

अंत किसी का कब हुआ?
अनंत सब हे सन्त!
पर ! सब मिटता सा लगे,
पतझड़ पुनः बसन्त।।६०।।

क्रूर भयानक सिंह भी,
फना उठाते नाग।
तीर्थ जहाँ पर शान्त हो,
लपटों वाली आग।।६१।।

बिना मूल के चूल ना,
चूल बिना फल फूल।
रे! बिन विधि अनुकूल ये,
सभी धूल मत भूल।।६२।।

प्रभु दर्शन फिर गुरु कृपा,
तदनुसार पुरुषार्थ।
दुर्लभ जग में तीन ये,
मिले सार परमार्थ।।६३।।

सब कुछ लखते पर नहीं,
प्रभु में हास-विलास।
दर्पण रोया कब हँसा?
कैसा यह संन्यास?।।६४।।

बादल दलदल यदि करे,
दलदल धोवन - हार।
और कौन सा दल रहा?
धरती पर दिलदार।।६५।।

तरंग क्रम से चल रही,
पल पल प्रति पर्याय।
ध्रुव पदार्थ में पूर्व का,
व्यय होता, फिर आय !।।६६।।

रहस्य खुलता आप जब,
सहज मिटे संघर्ष।
वस्तु-धर्म के दरस से,
विषाद क्यों हो हर्ष ?।।६७।।

आस्था का बस विषय हैं,
शिव-पथ सदा अमूर्त।
वायु यान पथ कब दिखा,
शेष सभी पथ मूर्त।।६६।।

किये जा रहे जोश से,
विश्व शान्ति की घोष।
दोषों के तो कोष हैं,
कहाँ किसे है होश?।।६६।।

सुना, सुनाता तुम सुनो,
सोना "सो" ना प्राण।
प्राण जगाते झट जगो,
प्राणों का हो त्राण।।७०।।

सब को मिलता कब कहाँ?
अपार श्रुत का पार।
पर ! श्रुत पूजन से मिले,
अपार भवदधि पार।।७१।।

उपादान की योग्यता,
निमित्त की भी छाप।
स्फटिक मणी में लालिमा,
गुलाब बिन ना आप।।७२।।

पाप त्याग के बाद भी,
स्वल्प रहे संस्कार।
झालर बजना बन्द हो,
किन्तु रहे झंकार।।७३।।

राम रहे अविराम निज -
में रमते अभिराम।
राम नाम लेता रहूँ,
प्रणाम आठों याम।।७४।।

चन्दन घिसता चाहता,
मात्र गन्ध का दान।
फल की बांछा कब करें,
मुनिजन जनकल्याण।।७५।।

धर्म - ध्यान ना, शुक्ल से,
मोक्ष मिले आखीर।
जितना गहरा कूप हो,
उतना मीठा नीर।।७६।।

आकुल व्याकुल कुल रहा,
मानव संकुल कूल।
मिला न अब तक क्यों मिले,
प्रतीति जब प्रतिकूल।।७७।।

खून ज्ञान, नाखून से,
खून रहित नाखून।
चेतन का संधान तन,
तन चेतन से न्यून।।७८।।

आत्मबोध घर में तनक,
रागादिक से पूर।
कम प्रकाश अति धूम्र ले,
जलता अरे कपूर।।७९।।

लंगड़ा भी सुरगिरि चढ़े,
चील उड़ें इक पांख।
जले दीप, बिन तेल ना,
ना घर में अक्षय आँख।।८०।।

लगाम अंकुश बिन नहीं,
हय, गय देते साथ।
व्रत श्रुत बिन मन कब चले,
विनम्र कर के माथ।।८१।।

भटकी अटकी कब नदी?
लौटी कब अधबीच?
रे मन! तू क्यों भटकता?
अटका क्यों अघकीच?।।८२।।

भले कूर्मगति से चलो,
चलो कि ध्रुव की ओर।
किन्तु कूर्म के धर्म को,
पालो पल पल और।।८३।।

भक्त लीन जब ईश में,
यूँ कहते ऋषि लोग।
मणि - कांचन का योग ना,
मणि-प्रवाल का योग।।८४।।

खुला खिला हो कमल वह,
जब लौं जल संपर्क।
छूटा सूखा धर्म बिन,
नर पशु में ना फर्क।।८५।।

मन्द मन्द मुस्कान ले,
मानस हंसा होय।
अंश अंश प्रति अंश में,
मुनिवर हंसा मोय।।८६।।

गोमाता के दुग्धसम,
भारत का साहित्य।
शेष देश के क्या कहें,
कहने में लालित्य।।८७।।

उन्नत बनने नत बनो,
लघु से राघव होय।
कर्ण बिना भी धर्म से,
विजयी पाण्डव होय।।८८।।

पुन भस्म पारा बने,
मिले खटाई योग।
बनो सिद्ध पर-मोह तज,
करो शुद्ध उपयोग।।८६।।

माध्यस्था हो नासिका,
प्रमाणिका नय आँख।
पूरक आपस में रहे,
कलह मिटे अघ-पाक।।६०।।

तन की गरमी तो मिटे,
मन की भी मिट जाय।
तीर्थ जहाँ पर उभय - सुख,
अमिट अमित मिल जाय।।६१।।

अनल सलिल हो विष सुधा,
व्याल - माल बन जाय।
दया मूर्ति के दरस से,
"क्या का क्या" बन जाय।।६२।।

सुचिर काल से सो रहा,
तन का करता राग।
ऊषा सम नर जन्म है,
जाग सके तो जाग।।६३।।

पूर्ण पुण्य का बन्ध हो,
पाप - मूल मिट जात।
दलदल पल में सब धुले,
भारी हो बरसात।।६४।।

कुछ पर - पीड़ा दूर कर,
कुछ पर को दे पीर।
सुख पाना जन (जब) चाहते,
तरह तरह तासीर।।६५।।

दुर्जन से जब भेंट हो,
सज्जन की पहचान।
ग्रहण लगे जब भानु को
तभी राहु का भान।।६६।।

तीरथ जिसमें अघ घुले,
मिलता भव का तीर।
कीरत जग भर में घुले,
मिटती भव की पीर।।६७।।

सत्य कार्य, कारण सही,
रही अहिंसा-मात।
फल का कारण फूल हैं,
फूल बचाओ भ्रात!।।६८।।

अर्कतूल का पतन हो,
जल - कण का पा संग।
कण या मन के संग से,
रहे न मुनि पासंग।।६९।।

जिसके उर में प्रभु लसे,
क्यों न तजे जड़ राग।
चन्द्र मिले फिर ना करें,
चकवा, चकवी त्याग ?।।१००।।

स्थल एवं समय-संकेत

उदय नर्मदा का जहाँ,
आम्र-कूट की मोर।
सर्वोदय का शतक का,
उदय हुआ है भोर।।१०१।।

गगन[1]-गन्ध-गति-गोत्र की,
अक्षय तृतिया पर्व,
पूर्ण हुआ शुभ सुखद है,
पढ़े सुनें हम सर्व।।१०२।।

१ संतशिरोमणी दिगम्बर जैनाचार्य श्री विद्यासागर मुनि महाराज के द्वारा नर्मदा नदी के उद्गमस्थल तथा आम्रकूट वन की मोर के लिए सुप्रसिद्ध "सर्वोदय तीर्थ" अमरकण्टक शहडोल म प्र में गगन ० गन्ध २ गति ५ गोत्र २ अंकानां बामतो गतिः के अनुसार वीर निर्वाण संवत् २५२० , विक्रम संवत् २०५१ की वैशाख शुक्ल तृतीया अक्षयतृतीया पर्व ,शुक्रवार , १३ मई १९९४ को यह सर्वोदय शतक पूर्ण हुआ ।

प्रारंभिक रचनाएँ

आचार्य श्री शान्ति सागर महाराज के पावन - चरणों में सविनय श्रद्धांजलि
बसन्ततिलका'छन्द

'मैसूर राज्य' अविभाज्य, विराजता औ,
शोभामयी - नयन मन्जु सुदीखता जो।
त्यों शोभता, मुदित भारत - मेदिनी में,
ज्यों शोभता, मधुप - फुल्ल सरोजिनी में।।१।।

है 'बेलगाँव' सुविशाल जिला निराला,
सौन्दर्य – पूर्ण जिसमें पथ हैं विशाला।
अभ्रंलिहा परम उन्नत सौधमाला,
जो है वहाँ अमित उज्ज्वल औ उजाला।।२।।

है पास 'भोज' इसके नयनाभिराम,
राकेन्दु-सा अवनिमें लखता ललाम ।
श्रीभाल में ललित कुंकुम शोभता ज्यों,
औ भोज भी अवनि मध्य सुशोभता त्यों।। ३।।

आके मिली विपुल निर्मल नीर वाली,
हैं भोज में सरित दो सुपयोज वाली।
विख्यात है इक सुनो वर 'दूध गंगा',
दूजी अहो! सरस शान्त सु 'वेदगंगा'।। ४।।

श्रीमान् महान् विनयवान् बलवान् सुधीमान्,
श्री 'भीमगौड़' मनुजोत्तम औ दयावान्।
सत्यात्म थे, कुटिल आचरणज्ञ ना थे,
जो भोज में कृषि कला अभिविज्ञ वा थे।।५।।

नीतिज्ञ थे, सदय थे, सुपरोपकारी,
पुण्यात्म थे सकल मानव हर्षकारी।
जो लीन धर्म अरु अर्थ सुकाम में थे,
औ वीरनाथ वृष के वर भक्त यों थे।।६।।

श्री भीमगौड़ ललना अभि सत्यरूपा,
थी काय कान्ति जिसकी रति - सी अनूपा।
सीता समा, गुणवती, वर नारि रत्ना,
जो थी यहाँ नित नितान्त सुनीतिमग्ना।।७।।

नाना कला निपुण थी मृदुभाषिणी, थीं
शोभावती मृगदृगी गतमानिनी थी।
लोकोत्तरा छविमयी तनवाहिनी थी,
सर्वसहा-अवनि-सी समतामयी थी।।८।।

मन्दोदरी सम सुनारि सुलक्षिणी थी,
श्री प्राणनाथ - मद - आलस - हारिणी थी।
हँसानना शशिकला मनमोहिनी थी,
लक्ष्मी समान जग सिंहकटी सती थी।।९।।

हीरे समा नयन रम्य सुदिव्य अच्छे,
थे सूर्य चन्द्र सम तेज, सुशान्त बच्चे।
जन्में दया भरित नारि सुकूँख से थे,
दोनों अहो ! परम सुन्दर लाडले थे।।१०।।

था ज्येष्ठ पुष्ट अतिहृष्ट सु-देवगौड़ा,
छोटा बड़ा चतुर बालक 'सातगौड़ा'।
दोनों अहो ! सुकुल के यश-कोश ही थे,
या प्रेम के परम-पावन-सौध ही थे।।११।।

होता विवाह पर शैशवकाल में ही,
पाती प्रिया अनुज की द्रुत मृत्यु यों ही।
बीती कई तदुपरान्त अहर्निशायें,
जागी तदा नव-विवाह सुयोजनायें।।१२।।

तो देख दृश्य वह बालक सोचता है,
है पंक ही नव विवाह, न रोचता है।
दुर्भाग्य से सघन-कर्दम में फँसा था,
सौभाग्य से बच गया, यह तीव्र साता।।१३।।

माँ ! मात्र एक ललना चिर से बची है,
वैसी न नीरज मुखी अब लों मिली है।
हो चाहती मम विवाह मुझे बता दो,
जल्दी मुझे अहह ! अंब ! शिवांगना दो।।१४।।

इत्थं कहा द्रुत तदा वच भी स्व-माँ को,
निर्भीक भीम-सुत ने सुमृगाक्षिणी को।
जो भीमगौड़ पति की अनुगामिनी थी,
औ कुन्दिता-मुकुलिता-दुखवाहिनी थी।।१५।।

काँटे मुझे दिख रहे घर में अहो! माँ,
चाहूँ नहीं घर निवास, अतः सुनो माँ।
है जैनधर्म जग सार, पुनीत भी है,
माता ! अतः मुनि बनूँ यह ही सही है।।१६।।

तू जायगा यदि अरण्य अरे सबेरे,
उत्फुल्ल-लोल-कल-लोचन-कंज मेरे
बेटा ! अरे ! लहलहा कल ना रहेंगे,
होंगे न उल्लसित औ न कभी खिलेंगे।।१७।।

रोती, सती, बिलखती, गत-हर्षिणी थी,
जो सातगौड़ जननी, गजगामिनी थी।
बोली निजीय सुत को नलिनीमुखी यों,
ओ पुत्र ! सन्मुख तथा रख दी व्यथा यों।।१८।।

माता अहो ! भयानक-काननी में,
कोई नहीं शरण है इस मेदिनी में।
सद्धर्म छोड़ सब ही दुखदायिनी है,
वाणी जिनेन्द्र कथिता सुखदायिनी है।।१९।।

माधुर्य-पूर्ण समयोचित भारती को,
माँ को कही सजल-लोचन-वाहिनी को।
रोती तथा बिलखती उर पीट लेती,
जो बीच बीच रुकती, फिर श्वाँस लेती।।२०।।

विद्रोह, मोह, निज-देह-विमोह छोड़ा,
आगे सुमोक्ष-पथ से अति नेह जोड़ा।
'देवेन्द्रकीर्ति' यति, से वर भक्ति साथ,
दीक्षा गही, वर लिया, वर मुक्ति पाथ।।२१।।

गम्भीर, पूर्ण, सुविशाल - शरीरधारी,
संसार-त्रस्त जन के द्रुत आर्तहारी।
औ वंश-राष्ट्र-पुर देश सुमाननीय,
जो थे सु-'शान्ति' यतिनायक वन्दनीय।।२१।।

विद्वेष की न इसमें कुछ भी निशानी,
सत्प्रेम के सदन थे, पर थे न मानी।
अत्यन्त जो लसित थी, इनमें (अ) नुकम्पा,
आशा तथा मुकुलिता अरु कोष चंपा।।२२।।

थे दूर नारि कुल से, अति-भीरू यों थे,
औ शील-सुन्दर-रमापति किन्तु जो थे!
की आपने न पर या वृष की उपेक्षा
थी आपको नित शिवालय की अपेक्षा।।२४।।

स्वामी, तितिक्षु, न बुभुक्षु, मुमुक्षु जो थे,
मोक्षेच्छु रक्षक, न भक्षक, दक्ष औ थे।
यानी, सुधी, विमल-मानस-आत्मवादी
शुद्धात्म के अनुभवी, तुम अप्रमादी।।२५।।

निश्चिंत हो, निडर निश्चल, नित्य भारी,
थे ध्यान-मौन धरते तप औ करारी।
थे शीत ताप सहते, गहते न मान,
ते सर्वदा स्वरस का करते सुपान।।२६।।

शालीनतामय सुजीवन आपका था,
आलस्य, हास्य विनिवर्जित शस्य औ था।
थी आपमें सरसता व कृपालुता थी,
औ आप में नित नितान्त कृतज्ञता थी।।२७।।

थे आप शिष्ट, वृषनिष्ठ, वरिष्ठयोगी,
संतुष्ट थे, गुणगरिष्ठ, बलिष्ठ यों भी।
थे अन्तरंग, बहिरंग, निसंग नंगे,
इत्थं न हो यदि, कुकर्म नहीं कटेंगे।। २८।।

था स्वच्छ, अच्छ व अतुच्छ चरित्र तेरा,
था जीवनातिभजनीय पवित्र तेरा।
ना कृष्य देह तब जो तप साधना से,
यों चाहते मिलन आप शिवांगना से।।२६।।

प्रायः कदाचरण युक्त अहो धरा थी,
सन्मार्ग रूढ़ मुनि मूर्ति न पूर्व में थी।
चरित्र का नव नवीन पुनीत पंथ,
जो भी यहाँ दिख रहा तव देन संत।।३०।।

ज्ञानी विशारद सुशर्म पिपासु साधु,
औ जो विशाल नर नारि समूह चारु।
सारे विनीत तव पाद-सुनीरजों में,
आसीन थे भ्रमर से निशि में, दिवा में।।३१।।

संसार सागर असार अपार खार,
गम्भीर पीर सहता इह बार-बार।
भारी कदाचरण भार विमोह धार,
धिक् धिक् अतः अबुध जीव हुआ न पार।।३२।।

थे शेडबाल गुरुजी इक बार आये,
इत्थं अहो सकल मानव को सुनाये।
"भारी प्रभाव मुझ पै तब भारती का,
देखो पड़ा इसलिये मुनि हूँ अभी का"।।३३।।

अच्छे बुरे सब सदा न कभी रहे हैं,
औ जन्म भी मरण भी अनिवार्य ही है।
आचार्यवर्य गुरुवर्य समाधि लेके,
सानन्द देह तज, 'शान्ति' गये अकेले।।३४।।

छाई अतः दुख निशा ललना-जनों में,
औ खिन्नता, मलिनता, भयता नरों में ।
आमोद हास सविलास विनोद सारे,
है लुप्त मंगल सुवाद्य अभी सितारे।। ३५।।

सारी विशाल जनता महि में दुखी है,
चिन्ता-सरोवर-निमज्जित आज भी है।
चर्चा अपार चलती दिन रैन ऐसी,
आई भयानक परिस्थिति हाय! कैसी?।।३६।।

फैली व्यथा, मलिनता, जनता-मुखों में
हा! हा! मची रुदन भी नर नारियों में।
क्रीड़ा उमंग तज के वय बाल बाला,
बैठी अभी वदन को करके सुकाला।।३७।।

हे ! तात !! घात !! पविपात !! हुआ यहाँ पै,
आचार्यवर्य गुरुवर्य गये कहाँ पै?
जन्में सुरेन्द्रपुर में, दिवि में जहाँ पै,
हूँ भेजता 'स्तुति सरोज' अतः वहाँ पै।।३८।।

संतोष-कोष गत रोष "सुशान्ति-सिन्धु',
मैं बार-बार तब पाद सरोज वन्दूँ।
हूँ "ज्ञान का प्रथम शिष्य", अवश्य बाल,
"विद्या" सुशान्ति पद में धरता स्व-भाल।।३९।।

श्री शान्तिसागराय नमः

आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज के पावन चरणारविन्द में हार्दिक श्रद्धांजलि
बसन्ततिलका छन्द

अत्यन्त है ललित 'हैदरबाद राज',
साक्षात् यहाँ मुदित भारत-शीश ताज।
'औरंगवाद' सुविशाल जिला निराला ,
देखो जहाँ कलह का न कभी सवाला।।१।।

है 'ईर' सुन्दर यहाँ इसके समाना,
है ही नहीं सुरपुरी दिवि में सुभाना।
आते सदा निरखने इसको सुजाना,
शोभामयी परम-वैभव का खजाना।।

जो श्री जिनालय सुमुन्नत ईर में हैं,
मानो कहीं नभ रमा मुख चूमते हैं।
प्रक्षाल पूजन तथा जिन गीत गाते,
तो कर्म को सब मुमुक्षु जहाँ खपाते।।३।।

जो श्रेष्ठ सेठ वृष-निष्ठ सुईर में थे,
दानी निरन्तर सुलीन सुधर्म में थे।
था 'रामचन्द्र' जिनका वह श्राव्य नाम,
नामानुरूप अभिराम गुणैक धाम।।४।।

धर्मात्म थे, सदय थे, सुपरोपकारी,
षट्कर्म लीन नित थे बुध चित्तहारी।
संतोष के सदन थे विनयी, कृपालु,
सत्कार्य में रत कृतज्ञ, सदा दयालु।।५।।

श्री रामचन्द्र ललना मनमोहिनी थी,
सीता समा, परम-शील-शिरोमणी थी।
शोभावती मदन को प्रमदारती थी,
चंद्रानना, परम-भाग्यवती, सती थी।।६।।

हीरे समा-नयन रम्य सुदिव्य अच्छे,
थे सूर्य-चन्द्र-सम तेज सुशांत अच्छे।
जन्में दया भरित-नारि सुकूँख से थे,
दोनों अहो! परम सुन्दर लाडलें थे।।७।।

जो जेष्ठ, पुष्ठ अति हृष्ठ 'गुलाबचन्द्र'
'हीरादिलाल' लघु भाग्यवती सुनन्द।
दोनों अहो! सुकूल के यश-कोष ही थे,
या प्रेम के परम-पावन-सौध ही थे।।८।।

तू यौवनोपवन में स्थित दर्शनीय,
तेरा विवाह करना अति श्लाघनीय।
तू हो गया अब बड़ा अवलोकनीय,
नक्षत्र बीच शशि ज्यों, अति शोभनीय।।६।।

आयोजना विविध है, बहु है विशेष
सासू मुझे अब रहा बननाऽवशेष।
ऐसा निजीय लघु बालक को सुनाया,
मानो सुभाग्यवति ने मन को दिखाया।।१०।।

चाहूँ नहीं विभव अम्ब! तथा विवाह,
कैसे फँसू विषय में, मम है न चाह।
मेरा विवाह इस जीवन में न होगा।
जो आपका यतन व्यर्थ अवश्य होगा।।११।।

ऐसा विचार सुत का सुन भाग्यमाता,
रोती कही, उदय में मम क्यों असाता?
ऐसा कुमार कह रे! मत हा! मुझे तू,
क्यों दे रहा दुसह दुःख वृथा मुझें तू।।१२।।

छूटी तभी युगल लोचन नीर-धार,
हा हा! हुई व्यथित भाग्यवती अपार।
रोती घनी बिलखती उर पीट लेती,
औ बीच-बीच रुक के चिर श्वांस लेती।।१३।।

संसार के विषय तो विष हैं सुनो माँ,
क्या मारना चह रही मुझको कहो माँ!
अत्यन्त दुःख सहता मम जीव आया,
भारी मुझे विषय सेवन ने सताया।।१४।।

है नारकी नरक में मुझको बनाया,
माता! निगोद तक भी उसने दिखाया
यों हीरलाल जिसने निज-भाव गाया,
वैराग्यपूर्ण उपदेश उन्हें सुनाया।।१५।।

संसार को विषम जान अनित्य मान,
औ निन्द्य हेय निजघातक दुख जान।
आगे वहाँ चल दिया वह हीरलाल,
थे शांतिसागर जहाँ गुरु जो निहाल।।१६।।

हीरादिलाल वह जा गुरु 'शांति' पास,
दीक्षा गही तव किया निज में निवास।
तो 'वीरसागर' सुसार्थक नाम पाया,
वीरत्व को जगत सम्मुख भी दिखाया।।१७।।

नादान, दीन मतिहीन, न धर्महीन,
स्वामी! अतः स्तुति लिखूँ तब मैं नवीन।
तो आपके स्तवन से निज को लखूँगा,
मैं अंत में करम काट सुखी बनूँगा।।१८।।

श्री वीरसागर सुधीर महान वीर,
थे नीर राशि सम आप सदा गभीर।
स्वामी सुदूर करते जग-जीव-पीर,
पीते सदा परम-पावन धर्म-नीर।।१९।।

स्त्री आपकी परम सुन्दर जो क्षमा थी।
सेवा सदैव तव थी करती रमा-सी।
स्वामी! सहर्ष उस संग सदा विनोद,
मोक्षार्थ मात्र करते, गहते प्रमोद।।२०।।

आहार मात्र तप वर्धन हेतु लेते,
थे एक बार तन को तन का हि देते।
मिष्ठान्न को पर कभी मन में न लाते,
स्वामी नहीं इसलिये रस-राज खाते।।२१।।

छ्यालीस दोष तज के अरु मौन धार,
जैसा मिले अशन ने यह योग सार।
शास्त्रानुकूल वह भी दिन में खड़े हो,
लेते अतः परम-पूज्य हुए बड़े हो।।२२।।

आधार थे सकल मानव के यहाँ पै,
जैसे सुनींव घर की रहती धरी पै।
निर्दोष था तब पुनीत अखंड शील,
था आपका हृदय तो अतिशांत झील।।२३।।

श्रद्धान जैन मत का तुमको सदा था,
सद्ज्ञान 'शान्ति गुरू' से तुमको मिला था।
चारित्र तो तब यहाँ किसको छिपा था,
तेरे झुके चरण में मम मात्र माथा।।२४।।

त्रैलोक्य को मदन यद्यपि जीत पाया,
था आपका वह नहीं पर पास आया।
क्या सिंह के निकट भी गज यूथ जाता?
जाके कभी स्वबल से उसको सताता?।।२५।।

शुद्धात्म में रत सदा, दिन में न सोते,
थे किन्तु आप दिन रैन कुकर्म खोते।
थी आपकी परम मार्दव धर्म-शय्या,
थे नाव के मम यहाँ तुम ही खिवैया।।२६।।

निर्मेघ-नील-नभ में शशि-बिंब जैसा,
शोभायमान तब जीवन नित्य वैसा।
स्वामी कभी न पर दोष उछालते थे,
वे बार-बार पर में गुण ढूँढते थे।।२७।।

आराध्य की सतत थे करते सुभक्ति,
कैसे मिले उस बिना निज को सुमुक्ति।
तेरी अतः कठिन दुर्लभ साधना थी,
थी स्वर्ग की न तुमको, शिव-कामना थी।।२८।।

स्वाध्याय लीन रहते निज दोष धोते,
साधर्मि को लख सदा परितृप्त होते।
आराधनामय हुताशन से जलाते,
कालुष्य राग-तृण को तब आत्म ध्याते।।२९।।

निःस्वार्थतामय सुजीवन आपका था,
मिथ्यात्व क्षोभ अरु लोभ विहीन भी था।
उत्तुंग मेरुगिरी सादृश कंपहीन,
थे नित्य ध्यान धरते तप में सुलीन।।३०।।

थे बीस-आठ गुणधारक अप्रमादी,
थी आपने सकल ग्रन्थि अहो! हटा दी।
अत्यन्त शांत, गत-क्लांत, नितांत शस्य,
थे आप, हैं सब तुम्हें नमते मनुष्य।।३१।।

थे भद्र ! भव्य, अघनाशक, प्रेम - धाम,
था द्वेष का न तुममें कुछ भी विराम।
संतोष से हृदय पूरित आपका था,
कौटिल्य से विकल नाम न पाप का था।।३२।।

वात्सल्य था हृदय में, पर था न शल्य,
स्वामी अतः अवनि में तुम तोष-कल्य।
आरम्भ, दम्भ मय था न चरित्र तेरा,
तेरे रहे चरण में यह शीश मेरा।।३३।।

आदर्श से विमल, उज्ज्वल थे प्रशस्त,
दुर्ध्यान से रहित थे, नित आत्म-व्यस्त।
विद्यानुमंडित रहे जग-दुख-हारी,
'विद्या' न दर्शन किया तव खेद भारी!!।।३४।।

था आप में सकल-संयम ओत-प्रोत,
संसार में तरण-तारण आप पोत।
की आपने न कब भी पर की अवज्ञा,
टाली सु-'शांति गुरु' की न कदापि आज्ञा।।३५।।

देते कभी न रिपु को अभिशाप आप,
लाते नहीं हृदय में परिताप पाप।
स्वामी कभी समय का न कियाऽपलाप,
आलस्य त्याग, जपते जिन-इन्द्र जाप।।३६।।

थे आप शिष्ट, वृष-निष्ठ, वरिष्ठ योगी,
संतुष्ट औ गुण-गरिष्ठ, बलिष्ठ यों भी।
थे अन्तरंग-बहिरंग निसंग नंगे,
इत्थं न हो यदि कुकर्म नहीं कटेंगे।।३७।।

सूई समान व्यवहार करो सभी ही,
कैंची समान व्यवहार नहीं कभी भीं
ऐसा सुभाषण सदा सबको सुनाते,
श्री वीर-नाथ-पथ को सबको दिखाते।।३८।।

थे आपके प्रथम शिष्य 'शिव' शर्म योगी,
दूजे सुपूज्य 'जयसागरजी' निरोगी।
हैं विद्यमान 'श्रुतसागर' सिद्ध मूर्ति,
औ 'पद्म' 'सन्मति' मुनीश्वर 'धर्म' स्फूर्ति।।३९।।

अच्छे बुरे सब सदा न कभी रहे हैं,
तो जन्म भी मरण भी अनिवार्य ही है।
आचार्य-वर्य, गुरुवर्य समाधि ले के,
सानन्द देह तज "वीर" गये अकेले।।४०।।

हे तात! घात!! पविपात!! हुआ यहाँ पै,
आचार्य-वर्य गुरुवर्य गये कहाँ पै?
जन्मे सुरेन्द्र-पुर में, दिवि में जहाँ पै,
हूँ भेजता "स्तुते-सरोज" अतः वहाँ पै।।४१।।

श्री वीरसागर सुभव्य-सरोज बन्धू,
मैं बार-बार तव-पद-पयोज वँदू।।
हूँ 'ज्ञान का प्रथम-शिष्य' अवश्य बाल,
'विद्या' सुवीर-पद में धरता स्वभाल।।४२।।

श्री वीरसागराय नमः

आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज के पावन
चरणारविन्द में विनम्र श्रद्धांजलि

मन्दाक्रान्ता छन्द

'औरंगावाद' सुरपुर-सा, अत्यन्त जो दर्शनीय,
शोभावाला, निकट उसके, भूरि जो शोभनीय।
छोटा सा है 'अडपुर' जहाँ, न्यायमार्गाभिरूढ़,
धर्मात्मा हैं, जनगण अहो! जो रहे हैं अमूढ़।।१।।

धर्मात्मा थे, इस अड़पुरी, में सु-नेमी' सुधी थे,
पुण्यात्मा थे, अरु सदय थे, प्रेम कागार भी थे।
दानी औ थे, नर कुशल थे, द्वेष से दूर भी थे,
श्रद्धानी थे, वृषभ वृष के, मोद के पुंज भी थे।।२।।

तन्वंगी थी, वर मृगदृगी, और थी नारि रत्ना,
रत्नों में जो, परम अरुणान्वीत जैसा सुपन्ना।
या मानो थी, गुरुतमरसी-ली यथा यों सुगन्ना,
नेमी की थी, 'दगड़ललना', जो सदा नीतिमग्ना।।३।।

हीरा से भी, परमरुचिवाला हिरालाल बच्चा,
जन्मा था जो, उन नृवर से, था तथा भूरि सच्चा।
कांति ज्योति, कल वदन की, नेमीपुत्रांग की थी,
वैसी शोभा, नयन रुचिरा, कृष्ण की भी नहीं थी।।४।।

धीरे धीरे, शिशुपन टला, जो अतिल्हादकारी,
आई दौड़ी, दगड़-सुत में, जो जवानी करारी।
प्रायः सारे, तव वदन को, देख के जो कुँवारी,
होती थी वे, कुसुमशर के, काम के हा शिकारी।।५।।

बेटा तू तो, अब शिशु नहीं, तू बड़ा हो गया है,
बेटा तेरा, यह समय तो, दर्प का आ गया है।
ज्यों माँ बोली, अरु पितर भी, स्वीय हीरा रवी को,
त्यों ही बोला, उचित वच भी, नेमिसूनू स्व-माँ को।।६

देखो माँ जो, इक सुललना, जो बची है सदा से,
मेरी शादी, यदि हि करना, चाहती तो मुदा से।
मैं राजी हूँ, द्रुत तुम करो, मोक्ष-रूपी रमा से,
ऐसा बोला, परम सुकृती, नेमिसूनू स्व माँ से।।७।।

मेरा जी तो, शिव युवति से, मेल है चाहता माँ!
वैसी नारी, अब तक नहीं, देखने को मिली माँ।
ऐसी स्त्री की, इस अवनि में, है नहीं प्रोपमा माँ!
तो कैसे मैं, इस भवन में, जी सकूँ मोद से माँ!!।।८।।

धारा भारी, सजल दृग से, मोचती नेमि-रामा,
रोती बोली, अति बिलखती, नेमिकान्ताविरामा।
सासू तो मैं, इस सदन में, हो रहूँ एक बार,
ऐसी इच्छा, मम हृदय में, हो रही बार-बार।।९।।

प्यारे बेटा, सुन वचन तो, तू कहाँ जा रहा है,
मेरा जी तो, तब विरह से, कष्ट हा! पा रहा है।
एकाकी तू, वन गहन में, हा! न जा लाल मेरा,
कैसा होता, सुतप तपना, खिन्न भी काय तेरा।।१०।।

जावेगा तो, यदि कुँवर तू, प्राण मेरे चलेंगे,
मेरे दोनों, दृग जलज तो, जो कभी न खिलेंगे।
मेरी काया, किसलय-समा, शुष्कता को वरेगी,
या तो हा!हा! लघु समय में, काँतिहीना दिखेगी।।११।

देखो माँ जी, भव विपिन में, हाय! तेरा न मेरा,
प्रायः सारे, बुद-बुद समा, औ तथा पुत्र तेरा।
मैं तो माँ जी, श्रमण बन के, धर्म का स्वाद लूँगा,
दीक्षा लेके, सुशमदम से, दिव्य आत्मा लखूँगा।।१२।।

मीठी वाणी, सुरस भरिता, भूरि माँ को सुनाया,
औ भी अच्छे, वचन कह के, धैर्य माँ को दिलाया।
माता जी के, स्मित वचन से, दुख को भी दबाया,
प्रायः माँ को, जिन धरम का, पाठ भी औ पढ़ाया।।१३

नाता तोड़ा, स्वजन-चय का, भूरि जो कष्टदायी,
सारा छोड़ा, विषय विष को, जो अति क्लान्तदायी।
आगे देखो, परम गुरु से, 'वीर सिन्धू यती' से,
दीक्षा लेके, 'शिव मुनि' हुआ, मोद पाया वहीं से।।१४।

भव्यात्मा थे, मुनिगणमुखी, थे अतः साधु नेता,
शांति के थे, निलय गुरुजी, दर्प के थे विजेता ।
आचार्य श्री, शिवपथरति, थे बड़ेध्यात्मवेत्ता।
सत्यात्मा थे, करण–नग के, भी बड़े वे सुभेत्ता।।१५।।

शुद्धात्मा के, तुम अनुभवी, थे अतः-अप्रमादी,
संतोषी थे, वृष रसिक थे, औ अनेकान्तवादी।
स्वप्नों में भी, न तुम करते, दूसरे की अपेक्षा,
खाली देखो, शिवसदन की, आपको थी अपेक्षा।।१६।।

मोक्षार्थी थे, जिनभजक थे, साम्यवादी तथा थे,
ध्यानी भी थे, परहित-रती, सानुकम्पी सदा थे।
भव्यों को थे, शिवसदन का, मार्ग भी औ दिखाते,
सन्तों के तो, शिवगुरु यहाँ, जीवनाधार ही थे।।१७।।

साथी को भी, अरु अहित को, देखते थे समान,
थोड़ा सा भी, तब हृदय में, स्थान पाया न मान।
दीक्षा दे के, कतिपय जनों, को बनाया सुयोगी,
औ पीते थे, वृष अमृत को, चाव से थे विरागी।।१८।।

कामारी थे, शिवयुवति से, मेल भी चाहते थे,
नारी से तो, परम डरते, शील-नारीश भी थे।
ज्ञानी भी थे, सुतप तपते, देह से कृश्य भी थे,
मुक्ति श्री को, निशिदिन तभी, पास में देखते थे।।१९।

माथा रूपी, शिवफल तजूँ, आपके पादकों में,
श्रद्धारूपी, स्मित कुसुम को, मोचता हूँ तथा मैं।
मुद्रा है जो, शिवचरण में, औ रहे नित्य मेरी,
प्यारी मुद्रा, मम हृदय में, जो रहे हृद्य तेरी।।२०।।

छाई फैली, शिव-रवि छिपी, गाढ़ दोषा अमा की,
आई दौड़ी, घन दुख घटा, ले अमा फागुना की।
आचार्य श्री, अब इह नहीं, जो बड़े थे सुसौम्य,
जन्मे हैं वे, अमरपुरि में, है जहाँ स्थान रम्य।।२१।।

पाया मैं तो, तव दरश ना, जो बड़ा हूँ अभागा,
ज्ञानी होऊँ, तव भजन को, किन्तु मैं तो सुगा गा।
मैं पोता हूँ, भव जलधि के , आप तो पोत "दादा",
'विद्या' की जो, शिवगुरु अहो, दो मिटा कर्मबाधा।।२२

श्री शिवसागराय नमः

आचार्य श्री गुरुवर्य प्रातः स्मरणीय

श्री ज्ञानसागरजी मुनि महाराज के
पावन चरणों में सादर श्रद्धांजलि

गुरो ! दल दल में मैं था फँसा,
मोह-पाश से हुआ था कसा।
बन्ध छुड़ाया, दिया आधार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार।।१।।

पाप पंक से पूर्ण लिप्त था,
मोह नींद में सुचिर सुप्त था।
तुमने जगाया किया उपचार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार।।२।।

आपने किया महान उपकार,
पहनाया मुझे रतन-त्रय हार।
हुए साकार मम सब विचार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार।।३।।

मैंने कुछ ना की तब सेवा,
पर तुमसे मिला मिष्ठ मेवा।
यह गुरुवर की गरिमा अपार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार।।४।।

निज-धाम मिला, विश्राम मिला,
सब मिला, उर समकित-पद्म खिला।
अरे! गुरुवर का वर उपकार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार।।५।।

अँधा था, बहिरा था, था मैं अज्ञ,
दिये नयन व करण, बनाया विज्ञ।
समझाया मुझको समयसार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार।।६।।

मोह-मल धुला, शिव-द्वार खुला,
पिलाया निजामृत घुला-घुला।
कितना था गुरुवर उर-उदार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार।।७।।

प्रवृत्ति का परिपाक संसार,
निवृत्ति नित्य सुख का भंडार।
कितना मौलिक प्रवचन तुम्हार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार।।८।।

रवि से बढ़कर है काम किया,
जन-गण को बोध प्रकाश दिया।
चिर ऋणी रहेगा यह संसार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार।।९।।

स्व-पर हित तुम लिखते ग्रन्थ,
आचार्य उवझाय थे निर्ग्रन्थ।
तुम सा मुझे बनाया अनगार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार।।१०।।

इन्द्रिय-दमन कर कषाय-शमन,
करते निशदिन निज में ही रमण।
क्षमा था तव सुरम्य शृंगार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार।।११।।

बहु कष्ट सहे, समन्वयी रहे,
पक्षपात से नित दूर रहे।
चूँकि तुममें था साम्य-संचार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार।। १२।।

मुनि गावें तव-गुण-गण गाथा,
झुके तुम पाद में मम माथा।
चलते, चलाते समयानुसार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार।।१३।।

तुम थे द्वादश विध तप तपते,
पल पल जिनप नाम जप जपते।
किया धर्म का प्रसार-प्रचार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार।।१४।।

दुर्लभ से मिली यह ''ज्ञान'' सुधा,
''विद्या' पी इसे, मत रो मुधा।
कहते यों गुरुवर यही 'सार',
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार।।१५।।

व्यक्तित्व की सत्ता मिटा दी,
उसे महासत्ता में मिला दी!
क्यों न हो प्रभु से साक्षात्कार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार।।१६।।

करके दिखा दी संल्लेखना,
शब्दों में न हो उल्लेखना।
सुर, नर कर रहे जय जयकार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार।।१७।।

आधि नहीं थी, थी नहीं व्याधि,
जब आपने ली परम-समाधि।
अब तुम्हें क्यों न वरे शिवनार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार।।१८।।

मेरी भी हो इस विध समाधि,
रोष-तोष नशे, दोष उपाधि।
मम आधार, सहज समयसार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकर।।१९।।

जय हो ज्ञानसागर ऋषिराज!
तुमने मुझे सफल बनाया आज।
और इक बार करो उपकार,
मम प्रणाम तुम करो स्वीकार।।२०।।

श्री ज्ञानसागराय नमः

अन्य भक्ति-गीत

1. अब मैं मम मन्दिर में रहूँगा

अमिट, अमित अरु अतुल, अतीन्द्रिय,
अरहन्त पद को धरूँगा।
सज, धज निजको दश धर्मों से –
सविनय सहजता भजूँगा।। अब मैं।।
विषय - विषम - विष को जकर उस -
समरस पान मैं करूँगा।
जनम, मरण अरु जरा जनित दुख -
फिर क्यों वृथा मैं सहूँगा? ।। अब मैं।।
दुख दात्री है इसीलिए अब -
न माया - गणिका रखूँगा।
निसंग बनकर शिवांगना संग -
सानन्द चिर मैं रहूँगा ।।अब मैं।।
भूला, परमें फूला, झूला -
भावी भूल ना करूँगा।
निजमें निजका अहो! निरन्तर -
निरंजन स्वरूप लखूँगा।। अब मैं।।
समय, समय पर समयसार मय -
मम आतम को प्रनमूँगा।
साहुकार जब मैं हूँ, फिर क्यों -
सेवक का कार्य करूँगा? ।।अब मैं।।

2. पर भाव त्याग तू बन शीघ्र दिगम्बर

छिदजाय, भिदजाय, गलजाय, सड़जाय,
सुधी कहे फिरभी विनश्वर जड़काय।
करे परिणमन जब निज भावों से सब,
देह नश रहा अब मम मरण कहाँ कब?।।
तव न ये, सर्वथा भिन्न देह अम्बर,
पर भाव त्याग तू बन शीघ्र दिगम्बर।।१।।
बन्ध कारण अतः रागादितो हेय,
वह शुद्धात्म ही अधुना उपादेय,
'मेरा न यह देह'' यह तो मात्र ज्ञेय,
ऐसा विचार हो मिले सौख्य अमेय।
दुख की जड़ आस्रव शिव दाता संवर,
पर - भाव त्याग तू बन शीघ्र दिगम्बर।।२।।
अब तक पर में ही तू ने सुख माना,
इसलिये भयंकर पड़ा दुख उठाना।
वह ऊँचाई नहीं जहाँ से हो पतन
तथा वह सुख नहीं जहाँ क्लेश चिंतन।
इक बार तो जिया लख निज के अन्दर,
पर भाव त्याग तू बन शीघ्र दिगम्बर।।३।।
स्व-पर बोध विन तो! बहुत काल खोया,
हाय! सुख न पाया दुःख बीज बोया।
"विद्या" आँख खोल समय यह अनमोल,
रह निजमें अडोल अमृत - विष न घोल।
शुद्धोपयोग ही त्रिभुवन में सुन्दर।।
पर भाव त्याग तू बन शीघ्र दिगम्बर।।४।।

3. मोक्ष - ललना को जिया ! कब बरेगा?

स्वरूप - बोध बिन, सहता दुख निशिदिन,
यदि उसे पाता, तू बन सकता जिन।
नितनिजा - नुमनन कर व्यामोह हनन,
चाहता न मरण यदि न जरा न जनन।
आशा - गर्त यह कदापि न भरेगा,
मोक्ष - ललना को जिया! कब बरेगा?।।१।।
सुखदाता नहीं मात्र वस्त्र मुंचन,
दुखहर्ता नहीं मात्र केश लुंचन।
करे राग द्वेष जो धर नग्न - भेष,
वे अहो जिनेश! पावें न सुख लेश।।
आत्मावलोकन अरे! कब करेगा,
मोक्ष – ललना को जिया ! कब वरेगा? ।।२।।
करता न प्रमाद, नहीं हर्ष विषाद,
लेता वही मुनि, नियम से निज - स्वाद।
सुमणि तज काच में, क्यों तू नित रमता?
पी मद, अमृत तज, क्यों भव में भ्रमता?
निज - भक्ति - रस कब, तुझ में झरेगा?
मोक्ष - ललना को जिया! कब वरेगा? ।।३।।
तज मूढ़ता त्रय, भज सदा रत्नत्रय,
यदि सुख चाहता, ले ले, झट स्वाश्रय।
अब ''विद्या'' जाग, अरे! शिव - पथलाग,
शीघ्र राग त्याग, बन तू वीतराग।।
कब तक लोक में, जनम ले मरेगा?
मोक्ष - ललना को जिया! कब वरेगा?।।४।।

4. भटकन तब तक भव में जारी

विषय - विषम विष को तुम त्यागो,
पी निज सम रस को भवि! जागो।
निज से निज का नाता जोड़ो,
परसे निज का नाता तोड़ो।।
मिले न तब तक वह शिवनारी,
निज - स्तुति जब तक लगे न प्यारी।।१।।
जो रति रखता कभी न परमें,
सुखका बनता घर वह पलमें।
वितथ परिणमन के कारण जिय!,
न मिले तुझको शिव-ललना-प्रिय।।
जप, तप तब तक ना सुखकारी,
निज स्तुति जब तक लगे न प्यारी।।२।।
सज, धज निजको दश धर्मों से
छूटेगा झट अठ कर्मों से,
मैं तो चेतन अचेतन हीतन,
मिले शिव ललन, कर यों चिंतन।।
भटकन तब तक भव में जारी,
निज - स्तुति जब तक लगे न प्यारी।।३।।
अजर अमर तू निरंजन देव,
कर्ता धर्ता निजका सदैव।
अचल अमल अरु अरूप, अखंड,
चिन्मय जब है फिर क्यों घमंड?
'विद्या' तब तक भव दुख भारी,
निज - स्तुति जब तक लगे न प्यारी।।४।।

5. बनना चाहता यदि शिवांगना पति

कर कषाय शमन, पंच इन्द्रिय दमन,
नित निजमें रमण, कर स्वको ही नमन।
जिया! फिर भव में, नहीं पुनरागमन,
ओ! क्या बताऊं! बस चमन ही चमन।।
समता - सुधापी, तज मिथ्या परिणति,
बनना चाहता यदि शिवांगना - पति।।१।।
केवल पटादिक वह मूढ़ छोड़ता,
सुधी कषाय - घट, को झटिति तोड़ता।
गिरि - तीर्थ करता वह जिन दर्शनार्थ,
जिनागम जो मुनि पढ़ा नहीं यथार्थ।।
मद ममतादि तज बन तू निसंग यति,
बनना चाहता यदि शिवांगना - पति।।२।।
सुख दायिनी है यदि समकित - मणिका,
दुख दायिनी है वह माया - गणिका।
पीता न यदि तू निजानुभूति - सुधा,
स्वाध्याय, संयम, तप कर्म भी मुधा।।
दिनरैन रख तू केवल निज में रति,
बनना चाहता यदि शिवांगना पति।।३।।
उपादान सदृश होता सदा कार्य,
इस विधि आचार्य बताते अयि! आर्य!
'विद्या' सुनिर्मल, - निजातम अतः! भज,
परम समाधि में स्थित हो कषाय तज।।
संयम भावना बढ़ा दिनं प्रति अति,
बनना चाहता यदि शिवांगना पति।।४।।

6. चेतन निज को जान जरा

आत्मानुभवसे नियमसे होती
सकल करम निर्जरा
दुखकी शृंखला मिटे भव फेरी
मिट जाय जनन जरा
परमें सुख कहीं है नहीं जगमें
सुखतो निज में भरा
मद ममतादि तज धार शम, दम, यम
मिले शिव सौख्यखरा
यदि भव परम्परा से हुआ घबरा
तज देह नेह बुरा
तज विषमता झट, भज सहजता तू
मिल जाय मोक्ष पुरा
देह त्यों बंधन इस जीवको ज्यों
तोते को पिंजरा
बिन ज्ञान निशिदिन तन धार भव, वन
तू कई बार मरा
भटक, भटक जिया सुख हेतु भवमें
दुख सहता मर्मरा
चम चम चमकता निजातम हीरा
कांय काच कचरा

7. समकित लाभ

सत्य अहिंसा जहाँ लस रही, मृषा, हिंसा को स्थान नहीं।
मधुर रसमय जीवन वही, फिर स्वर्ग मोक्ष तो यही मही।।
कितनी पर हत्या हो रही, गायें कितनी रे! कट रहीं।
तभी तो अरे! भारत मही, म्लेच्छ खण्ड होती जा रही।।
लालच–लता लसित लहलहा, मनुज–विटप से लिपटी अहा।
भयंकर कर्म यहाँ से हो रहा, मानव दानव है बन रहा।।
केवल धुन लगी धन, धन, धन, चाहे कि धनिक हो या निर्धन।
लिखते लेकिन वे साधु जन, वह धन तो केवल पुद्गल कण।।
एकता नहीं मात्सर्य भाव, जग में है प्रेम का अभाव।
प्रसारित जहाँ तामस भाव, घर किया इनमें मनमुटाव।।
याचना जिनका मुख्य काम, बिना परिश्रम चाहते दाम।
सत्पुरुष कहें वे श्रीराम, पुरुषार्थी को मिले आराम।।
कहाँ तक कहें यह कहानी, कहते कहते थकती वाणी।
रह गई दूर वीर वाणी, विस्मरित हुई, हुई पुराणी।।
रसातल जा मत दुःख भोगो, मुधा पाप बीज मत बोओ।
हाय! अवसर वृथा मत खोओ, मोह नींद में कब तक सोओ।।
युगवीर का यही सन्देश, कभी किसी से करो न द्वेष।
गरीब हो या धनी नरेश, नीच उच्च का अन्तर न लेष।।
वीर नर तो वही कहाता, कदापि पर को नहीं सताता।
रहता भूखा खुद न खाता, भूखे को रोटी खिलाता।।
क्लव यह, करे सद् "विद्याभ्यास" रहे वीर चरणों में खास।
बस मुक्ति रमा आये पास, प्रेम करेगी हास विलास।।

MY - SELF

Oh! Passionlessness which is my nature.
So I am myself certain best teacher....
Anent consiousness of imperfaction
I have no eternal and real relation.
Objects of pleasure are like sharp razor
Whereby the soul deviates into danger.
My nature is free from deceitfulness
?Because filled with sure uprightness.
I am the store of asset of knowledge
So I am free from attachment and rage.

परिशिष्ट

समग्र - 3

कविताएँ

☐ कविता संग्रह

1. नर्मदा का नरम कंकर
2. डूबो मत, लगाओ डुबकी
3. तोता क्यों रोता

☐ हिन्दी शतक -

1. निजानुभव शतक
2. मुक्तक शतक
3. दोहा थुदि शतक
4. पूर्णोदय शतक
5. सर्वोदय शतक

☐ प्रारंभिक रचनाएँ

1. आचार्य श्री शान्तिसागर स्तुति
2. आचार्य श्री वीरसागर स्तुति
3. आचार्य श्री शिवसागर स्तुति
4. आचार्य श्री ज्ञानसागर स्तुति

☐ भक्ति-गीत

☐ नर्मदा का नरम कंकर

प्रकाशक –1. **सुभाषकपूरचंद जैन**
1980 दी श्री बदर्स
प्रथम संस्करण जवाहर रोड, अमरावती

1981 2. वीर निर्वाण ग्रंथ
द्वि.सं. प्रकाशक समिति, इन्दौर

प्रकाशक –3. माणकचंद सुरेशचंद जैन
तृ.सं. 278, नया बाजार
अजमेर (म.प्र.)

☐ डूबो मत लगाओ डुबकी

प्रकाशक –1. मानमाल महावीर प्रसाद झांझरी
गौशाला रोड, झुमरी तिलैया, बिहार

2. कल्याणमल ज्ञानचंद झांझरी
63, सर हरिराय गोयन्का स्ट्रीट
कलकत्ता –70

☐ तोता क्यों रोता

प्रकाशक – सुरेश सरल
'सरल कुटीर' गढ़ा फाटक जबलपुर (म.प्र.)

☐ शब्द - शब्द विद्या का सागर

(तीनों काव्य संग्रहों का संकलन)
ललित जैन – रोहतक

☐ मुक्तक शतक

प्रकाशक – विजय कुमार जैन
रोहतक

☐ दोहा स्तुदि शतक

प्रकाशक 1. दि. जैन अतिशय शतक
क्षेत्र बीना बारहा (देवरी)

2. राजूलाल कुंदनमल जैन सदर बाजार
दुर्ग (म.प्र.) (चतुर्विंशति तीर्थंकर स्तुति)

☐ पूर्णोदय शतक

प्रकाशक वीर विद्या संघ
गुजरात

☐ सर्वोदय शतक

प्रकाशक – वीर विद्या संघ
गुजरात
सिंघई मेडीकल स्टोर्स 1.
तेंदूखेड़ा
कुंडलपुर सिद्ध क्षेत्र से प्रकाशित 2.
दमोह

☐ निजानुभव शतक

प्रकाशक गुलाबचंद रमेशचंद्र जैन पारिमार्थिक ट्रस्ट 3.
अजमेर। (ग्वालियर, दमोह, तेंदूखेड़ा, वारावंकी
आदि स्थानों से आठ संस्करण

☐ प्रारंभिक रचनाएँ

प्रकाशक 1. चातुर्मास स्मारिका व्याबर
(राज.) (१९७३)
2. स्मारिका कलकत्ता (समाचार पत्रक)
3. स्तुति – सरोज
सिंघई ताराचंद जैन बाझल
राजेश दाल मिल
पथरिया (दमोह)